आर्यभ[illegible]

महान ग[illegible]

गुणा[illegible]

करीब एक हज़ार साल [illegible] भारत में। वहीं जहां बाद में उन्हें [illegible]ान गणितज्ञ स्वीकार[illegible]

ऐसे सवाल हमें उस[illegible]र राजनैतिक माहौल में फिर से[illegible] क्या मान्यताएं मौजूद थीं उस [illegible] गैलीलियो और ब्रूनो भी याद आ[illegible] की मान्यताओं के चलते [illegible]ना पड़ा था।

कभी-कभी [illegible] भी स[illegible] किए जाते। [illegible] वैज्ञानिक [illegible] हैं, उपेक्षि[illegible]

[illegible]स तरह के अनेक उदाहरण मिलते [illegible]। ऐसा ही एक उदाहरण है आर्यभट, और गणित-ज्योतिष* से संबंधित उनका क्रांतिकारी कृतित्व। आज हम यकीन के साथ कह सकते हैं कि आर्यभट

* आज [illegible]ारत में ज्योतिष की दो शाखाएं थीं। गणित ज्योतिष जिस में [illegible] आदि पिंड कितनी दूरी पर हैं, कितने दिनों में किन मार्गों से [illegible] शाखा, फलित ज्योतिष में ग्रह, नक्षत्रों आदि के मनुष्य जाति पर पड़ने वाले [illegible] पर विचार होता था।

प्राचीन भारत के एक सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ-ज्योतिषी थे। अब पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि आर्यभट अपने समय (ईसा की पांचवी-छठी सदी) के संसार के एक महान वैज्ञानिक थे। मगर उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल तक भारतवासी उन्हें लगभग भूल ही गए थे। उनके ग्रंथ *आर्यभटीय* की हस्तलिपियां पिछली कई सदियों से भारत के अधिकांश प्रदेशों से लुप्त रही हैं। उनका एक अन्य ग्रंथ *आर्यभट-सिद्धांत* आज भी अप्राप्य है।

भूमिका

ऐसी बात नहीं है कि आर्यभट और उनका कृतित्व आरंभ से ही उपेक्षित रहा। स्पष्ट जानकारी मिलती है कि आर्यभट का जन्म 476 ई. में हुआ था और उन्होंने अपना *आर्यभटीय* ग्रंथ 499 ई. में या उसके कुछ साल बाद लिखा। उनके इस ग्रंथ में नवीनता थी, उनकी कई परिकल्पनाएं क्रांतिकारी थीं, ग्रंथ सूत्र-शैली में लिखा गया था, इसलिए उन्हें और उनकी कृति को बहुत जल्दी ख्याति मिल गई।

आर्यभटीय की आज जो करीब एक दर्जन टीकाएं उपलब्ध हैं उनमें सबसे प्राचीन और सबसे उत्तम है, भास्कर प्रथम का *आर्यभटीय-भाष्य*, जो उन्होंने वलभी (सौराष्ट्र, गुजरात) में 629 ई. में लिखा था। भास्कर अपने दो अन्य ग्रंथों में आर्यभट के लिए 'श्रीमद्‌भट' और 'प्रभु' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं और *आर्यभटीय* को 'तपोभिराप्तम्' अर्थात 'तप से प्राप्त किया हुआ' बताते हैं। आर्यभट की स्तुति में रचे गए उनके दो श्लोकों का आशय है: "उन आर्यभट की जय हो जिनका ज्योतिष-शास्त्र बहुत काल तक सुदूर देशों में स्फुट फल देता है और जिनका यश सागर के पार तक पहुंच गया है। आर्यभट के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रहों की गति जानने में समर्थ नहीं है। अन्य लोग गहन अंधकार के समुद्र में घूम रहे हैं।"

यह भी पता चलता है कि 800 ई. के आसपास 'आर्यभटीय' का *जीज अल् अर्जबहर* के नाम से अरबी में अनुवाद हुआ था, परन्तु आज वह उपलब्ध नहीं है। स्वदेश में भी आर्यभट के ग्रंथ का इतना अधिक प्रभाव रहा कि हमारे देश में ग्रहगणित के सौर और ब्रह्म पक्षों के साथ-साथ एक स्वतंत्र आर्य पक्ष भी अस्तित्व में आ गया था।* आर्यभटीय के आधार पर कई स्वतंत्र ज्योतिष-ग्रंथ भी लिखे गए।

* गणित-ज्योतिष में ग्रहों व नक्षत्रों से संबंधित गणनाएं तीन सिद्धांतों के आधार पर की जाती थीं — सूर्य-सिद्धांत, ब्रह्म-सिद्धांत और आर्य-सिद्धांत। इनमें जो तरीके या 'सिस्टम' अपनाए गए हैं उन्हें सौर पक्ष, ब्रह्म पक्ष और आर्य पक्ष कहा जाता है।

दरअसल, आरंभ में कुछ सदियों तक गणित-ज्योतिष जगत में आर्यभट का खूब सम्मान रहा। परंपरा से प्रचलित एक काफी पुराने श्लोक के अनुसार, "पंचसिद्धांतों (पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश, रोमक और सौर) की पद्धतियों से गणित करने पर ग्रहों के गमन और ग्रहण आदि के बारे में जो दृष्टिवैषम्य (यानी गणना और अवलोकन में अंतर) प्रकट होता था उसे दूर करने के लिए कलियुग में स्वयं सूर्य भगवान कुसुमपुर में आर्यभट के नाम से भूगोलविद् और कुलपति होकर अवतरित हुए।"

आर्यभट का कृतित्व

प्राचीन भारत में आर्यभट और उनके कृतित्व की इस तरह की ख्याति का प्रमुख कारण था उनके द्वारा प्रतिपादित नए सिद्धांत। आगे बढ़ने के पहले आर्यभट की कुछ विशिष्ट उपलब्धियों पर एक नज़र डाल लेना उपयोगी होगा:

1. आर्यभट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भूभ्रमण (अर्थात पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है) का सिद्धांत प्रस्तुत करने वाले वे पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं।
2. आर्यभट ने सूर्य-ग्रहण और चंद्र-ग्रहण के सही कारण बताए।
3. प्राचीन भारत के अधिकांश विचारकों ने पंचमहाभूत का प्रतिपादन किया, किन्तु आर्यभट ने केवल चार महाभूतों – मिट्टी, जल, अग्नि और वायु को ही स्वीकार किया।*
4. आर्यभट ने महायुग को चार समान भागों में विभाजित किया, न कि मनुस्मृति की तरह 4 : 3 : 2 : 1 के अनुपात में।
5. आर्यभट ने वृत्त की परिधि और उसके व्यास के अनुपात (पाई, π) का मान 3.1416 दिया है, और इसे भी उन्होंने आसन्न यानी सन्निकट मान कहा है।
6. आर्यभट ने $3^{0}45'$ के अंतर पर अर्धज्याओं** के जो मान दिए हैं उनमें और आधुनिक त्रिकोणमिति

* भारतीय दर्शन के अनुसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी – इन पांच मूल तत्वों से सृष्टि की रचना हुई है। आर्यभट ने इनमे से आकाश को अलग कर दिया।

** ज्या वह रेखा जो वृत्त की किसी चाप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गई हो। यानी वृत्त की परिधि के किन्ही दो बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा।

द्वारा प्राप्त मानों में बहुत कम फर्क है।

7. अनिर्णीत समीकरण (indeterminate equation of the first order) का व्यापक हल प्रस्तुत करने वाले आर्यभट पहले गणितज्ञ हैं।

8. आर्यभट ने संस्कृत वर्णमाला का उपयोग करके एक नई अक्षरांक पद्धति को जन्म दिया। *आर्यभटीय* में वर्णित एक श्लोक से स्पष्ट है कि वे नई स्थानमान-युक्त अंक पद्धति से भी भलि भांति परिचित थे।

9. अक्षरांक पद्धति का उपयोग करके आर्यभट ने गणित व ज्योतिष को अपनी सिद्धांत-सूत्र शैली में प्रस्तुत किया। आर्यभट के सूत्रों और सिद्धांतों से प्राप्त परिणाम अवलोकन के अनुरूप थे, इसलिए भी प्राचीन भारत में उनके कृतित्व को बड़ी ख्याति मिली थी।

आर्यभटीय – पुस्तक का लोप

फिर क्या वजह है कि आर्यभट आधुनिक काल में लगभग नामशेष हो गए? अभी कुछ दशक पहले तक वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य की तुलना में आर्यभट की चर्चा बहुत कम होती थी। करीब चार दशक पहले *आर्यभटीय* की प्रकाशित प्रतियां भी भारत में सहज उपलब्ध नहीं थीं।

वस्तुतः पिछले करीब एक हज़ार वर्षों की कालावधि में आर्यभट का *आर्यभटीय* ग्रंथ लुप्तप्राय रहा, विशेष कर उत्तर भारत में। अल्बेरूनी (973-1048 ई.) ने करीब 13 साल तक भारत में रहकर मूल संस्कृत पुस्तकों से भारतीय गणित-ज्योतिष का व्यापक परिचय प्राप्त किया था, परंतु वे खेद के साथ लिखते हैं: "आर्यभट की कोई भी पुस्तक मैं प्राप्त नहीं कर सका। उनके बारे में मेरी सारी जानकारी ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रस्तुत उद्धरणों पर आधारित है।"

आंग्ल (अंग्रेज़) संस्कृतज्ञ हेनरी टॉमस कोलब्रूक ने 1817 ई. में जब भारतीय बीजगणित की विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत किया, तब आर्यभट का ग्रंथ उन्हें उपलब्ध नहीं था। शंकर

बालकृष्ण दीक्षित ने अपने *भारतीय ज्योतिष* में 1898 ई. में लिखा था: "आर्यसिद्धांत और आर्यपक्ष शब्द तो हमारे देश में प्रसिद्ध हैं, पर प्रत्यक्ष *आर्यसिद्धांत* ग्रंथ विशेषत: किसी को ज्ञात नहीं है। हम समझते हैं, महाराष्ट्र में किसी भी ज्योतिषी के पास इसकी प्रति नहीं होगी।" तात्पर्य यह कि, पिछली कई सदियों से समूचे उत्तर भारत में, और महाराष्ट्र में भी, आर्यभटीय की प्रतियां अप्राप्त रहीं।

कैसे मिली 'आर्यभटीय'

परंतु सुदूर दक्षिण भारत में, मुख्यत: मलयालम लिपि में, टीकाओं सहित *आर्यभटीय* की कई हस्तलिपियां उपलब्ध थीं। उनमें से कुछ हस्तलिपियां यूरोप के संग्रहालयों में भी पहुंच गई थीं, मगर उनका अध्ययन और प्रकाशन नहीं हो पाया था, और न ही उनके आधार [illegible] किसी यूरोपीय विद्वान ने आर्यभट [illegible] प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया था। [illegible] प्रथम यह काम किया डा. भाऊ द [illegible] लाड (1824-74 ई.) ने। उन्होंने 1865 ई. में केरल की यात्रा करके वहां मलयालम लिपि में *आर्यभटीय* की तीन ताड़पत्र पोथियां खोजीं। उनका अध्ययन करके भाऊ दाजी ने आर्यभट और *आर्यभटीय* के बारे में एक खोजपरक निबंध तैयार किया, जो 1863 ई. में लंदन की रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ। तभी विद्वज्जगत को आर्यभट के समय और उनके ग्रंथ के बारे में पहली बार प्रामाणिक जानकारी मिली।

डा. भाऊ दाजी ने अपने निबंध में सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि शुद्ध नाम 'आर्यभट' ही है, न कि 'आर्यभट्ट'। उन्होंने बताया कि *आर्यभटीय* के दो भाग हैं – दशगीतिका और आर्याष्टशत। फिर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि 'आर्याष्टशत' शब्द का अर्थ है – आर्या छंद में 108 श्लोक, न कि 800 श्लोक। डा. भाऊ दाजी *आर्यभटीय* को संपादित करके प्रकाशित कर देना चाहते थे, किन्तु सन् 1874 में असामयिक निधन के कारण वे इस कार्य को पूरा नहीं कर सके।

आर्यभटीय: पुस्तक का प्रकाशन

मगर अब यूरोप के विद्वानों को आर्यभट का महत्व काफी स्पष्ट हो गया था। यूरोप के जिन चंद संस्कृतज्ञों को आर्यभट के कृतित्व की थोड़ी-बहुत जानकारी थी उनमें से एक थे हैन्द्रिक केर्ण, जो अपने को 'भट्टकर्ण' भी लिखते थे। उन्होंने यूरोप में पहुंची *आर्यभटीय* की मलयाली हस्तलिपियों का उपयोग करके परमेश्वर (ईसा की 15वीं सदी) की टीका सहित *श्रीमदार्यभटीयम्* को सन् 1874 में लाइडेन (नीदरलैंड) से प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार पहली बार *आर्यभटीय*

का मुद्रित संस्करण उपल[illegible]
फिर उदयनारायण सि[illegible]
से *आर्यभटीय* की मुद्रित प्र[illegible]
और उसे हिन्दी अनुवाद [illegible]
1906 में मधुरपुर ([illegible]
से प्रकाशित किया। आ[illegible]
प्रबोधचंद्र सेनगुप्त का अं[illegible]
सन् 1927 में कलक[illegible]
वॉल्टेर यूजेन क्लार्क का अं[illegible]
सन् 1930 में शिकागो से [illegible]
हुआ। पं. बलदेव मिश्र का *आर्यभटीय* का हिन्दी *व्याख्या* सहित नया संस्करण सन् 1966 में पटना से प्रकाशित हुआ। वे यह भी बताते हैं कि "मेरे गुरुदेव म. म. पं. सुधाकर द्विवेदीजी ने इस पर इसलिए टीका नहीं लिखी कि उन्हें *आर्यभटीय* की कोई अच्छी पांडुलिपि नहीं मिली।"

क्या कारण है कि समूचे उत्तर भारत से, *आर्यभटीय* की प्रतियां गायब हो गई और सुदूर दक्षिण भारत में, प्रमुखतः केरल में ही, हमारे समय तक जैसे-तैसे टिकी रहीं? भारत के अधिकांश हिस्सों से *आर्यभटीय* के लुप्त हो जाने के कारणों का विवेचन हम आगे करेंगे। पहले यह देखें कि प्रमुखतः केरल में ही *आर्यभटीय* की प्रतियां क्यों उपलब्ध रहीं?

आर्यभटीय की जो ता[illegible] मिली हैं उनमें से अधिका[illegible] प्राप्त हुई और वे मलया[illegible] हैं। *आर्यभटीय* पर जो [illegible]

[illegible]ब्ध हैं उनमें बारह केरलीय [illegible] हैं। पता चलता है कि [illegible] कुछ समय बाद ही केरल [illegible]य का प्रचार हो गया था। [illegible]णितज्ञ-ज्योतिषी अपने [illegible] के अनुसार इसमें संशोधन [illegible] तमिल और मलयाली भाषी [illegible]रमान का पंचांग चलता है [illegible]आर्यपक्षीय है, अर्थात उनका [illegible]आर्यसिद्धांत के अनुसार है।

आर्यभटीय — पुस्तक का प्रसार

अब आर्यभट के अध्ययन के लिए काफी सामग्री उपलब्ध हो गई है। सन् 1976 में आर्यभट की 1500 वीं जयंती मनाई गई और उस अवसर पर भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली, ने *आर्यभटीय* के तीन प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किए। इनमें से एक में विस्तृत टिप्पणियों सहित अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है। इसी अवसर पर अकादमी ने *आर्यभटीय* का व्याख्या सहित एक सरल हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किया।

आर्यभटीय ग्रंथ दुरूह है, सूत्र शैली में लिखा गया है, इसलिए उसके प्रकाश[illegible] बाद भी आर्यभट की चर्चा [illegible] तक ही सीमित रही। भारत [illegible] कृत्रिम उपग्रह को 'आर्यभट' [illegible] 19 अप्रैल, 1975 को अंतरिक्ष में छोड़ा गया, तभी जाकर

आर्यभट द्वितीय

यहां यह बता देना उपयुक्त होगा कि इतिहास में आर्यभट नाम के एक और ज्योतिषी हुए हैं। उनका समय ईसा की दसवीं सदी है और उनका *महासिद्धांत* नामक एक ग्रंथ मिलता है। दोनों में भेद करने के लिए 'आर्यभटीय' के रचनाकार को प्रायः वृद्ध आर्यभट या आर्यभट-प्रथम कहा जाता है। और *महासिद्धांत* के रचयिता को आर्यभट-द्वितीय। द्वितीय आर्यभट अपने को प्रथम आर्यभट का अनुयायी बताते हैं, परंतु दोनों द्वारा प्रतिपादित कई मान्यताओं में काफी अंतर है।

प्राचीन भारत के इस महान गणितज्ञ-ज्योतिषी का नाम देश के कोने-कोने मे फैला। फिर अगले साल आर्यभट की 1500 वीं जयंती का आयोजन हुआ और *आर्यभटीय* के तीन-चार बढ़िया संस्करण उपलब्ध हुए, जिससे उनके बारे में विस्तृत जानकारी औरों तक पहुंची।

आर्यभट परंपरावादी नहीं थे। उन्होंने पुरानी मान्यताओं का अंधानुकरण नहीं किया। कई पुरानी मान्यताओं को – श्रुति-स्मृति और पुराणों द्वारा समर्थित होने पर भी – उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने गणित-ज्योतिष के वही सिद्धांत प्रतिपादित किए जो उन्हें सही और उपयुक्त प्रतीत हुए। *आर्यभटीय* के एक अंतिम श्लोक में उन्होंने लिखा भी है: "यथार्थ और मिथ्या ज्ञान के समुद्र में से मैंने यथार्थ ज्ञान के डूबे हुए रत्न को ब्रह्म के प्रसाद से, अपनी बुद्धि रूपी नाव की सहायता से बाहर निकाला है।"

आर्यभट के साथ भारतीय गणित-ज्योतिष में एक नई परंपरा शुरू होती है। *आर्यभटीय* को भारतीय गणित-ज्योतिष का प्रथम 'पौरुषेय' ग्रंथ माना जाता है; इसके पहले के ग्रंथों को 'अपौरुषेय' माना गया है। अपौरुषेय का आशय यही है कि वे ग्रंथ मनुष्य द्वारा रचित नहीं हैं, दैवीय प्रेरणा से लिखे गए संदेश हैं। पौरुषेय ग्रंथ आचार्यों द्वारा लिखे गए। आर्यभटीय भारतीय विज्ञान का पहला ग्रंथ है जिसमें रचनाकार ने अपने नाम, स्थान और समय के बारे में स्पष्ट जानकारी दी है।

2

जन्म, स्थान और काल

प्राचीन भारत में अधिकांश ग्रंथों में उनके रचनाकारों के बारे में कोई नहीं मिलती। विज्ञान से

संबंधित ग्रंथों और उनके रचनाकारों का भी यही हाल है। *वेदांग-ज्योतिष, शूल्वसूत्र, बक्षाली हस्तलिपि, चरक-संहिता, सुश्रुत-संहिता, सूर्य-सिद्धांत* आदि ग्रंथों के रचनाकाल के बारे में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती, न ही इनके रचयिताओं की जीवनियां मिलती हैं।

ऐसी स्थिति में यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आर्यभट अपने ग्रंथ में अपने नाम का स्पष्ट उल्लेख करते हैं और अपने समय के बारे में भी सुस्पष्ट सूचना देते हैं। अपने जन्मकाल की जानकारी देने वाले आर्यभट प्राचीन भारत के संभवतः पहले वैज्ञानिक हैं। इसका एक कारण भी है। ज्योतिष के ग्रंथों में गणनाएं एक सुनिश्चित समय से शुरू करनी पड़ती हैं। इसी संदर्भ में ज्योतिषी अक्सर अपने समय की भी जानकारी प्रस्तुत कर देता है। आर्यभट ने इस प्रथा की नींव डाली। बाद में कई ज्योतिषियों ने उनका अनुकरण किया। इसलिए हमें आर्यभट के बाद के कई गणितज्ञ-ज्योतिषियों के बारे में यह जानकारी मिल जाती है कि उन्होंने अपने ग्रंथ की रचना किस वर्ष में की थी।

आर्यभट अपने *आर्यभटीय* ग्रंथ में दो स्थानों पर अपने नाम का उल्लेख करते हैं। जैसा कि पहले भी बताया गया है, उनका सही नाम 'आर्यभट' ही है, न कि 'आर्यभट्ट'। भट का अर्थ है 'योद्धा'। बाद के ज्योतिषियों ने भी उन्हें आर्यभट नाम से ही स्मरण किया है।

आर्यभट का जन्म:

आर्यभट-प्रथम अपने जन्मकाल के बारे में सुस्पष्ट जानकारी देते हैं। *आर्यभटीय* के एक श्लोक में वे बताते हैं: "साठ वर्षों की साठ अवधियां और तीन युगपाद जब बीत चुके थे, तब मेरे जन्म के बाद 23 वर्ष गुज़र चुके थे।" अर्थात तीन युगों (कृत, त्रेता तथा द्वापर) के बीत जाने के बाद कलियुग के भी 60 x 60 = 3600 वर्ष बीत चुके थे, तब आर्यभट की आयु 23 साल की थी।

भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार, 'कलि' यानी कलियुग के 3179 वर्ष बीतने पर शककाल का आरंभ हुआ था। अतः आर्यभट 3600 – 3179 = 421 शक में 23 वर्ष के थे। यानी उनका जन्म 398 शक अथवा 476 ई. में हुआ था, और 499 ई. में वे 23 साल के रहे होंगे।*

आर्यभट के समय में अभी शककाल का विशेष प्रचार नहीं रहा होगा,

* शक संवत और अंग्रेज़ी कैलेंडर में 78 साल का अंतर होता है। अभी शक संवत वर्ष 1920 चल रहा है।

इसलिए अपने जन्मकाल की सूचना उन्होंने कलिवर्ष में दी है। गणित-ज्योतिष के क्षेत्र में शककाल का सर्वप्रथम उल्लेख वराहमिहिर (ईसा की छठी सदी) की *पंचसिद्धांतिका* में देखने को मिलता है। उनके बाद हुए *आर्यभटीय* के भाष्यकार भास्कर-प्रथम (629 ई.) और ब्रह्मगुप्त (628 ई.), दोनों ही अपनी रचनाओं में शककाल का उल्लेख करते हैं।

मगर सवाल उठता है कि आर्यभट ने कलि के बाद 3600 (499 ई.) का उल्लेख किस प्रयोजन से किया? क्या केवल यह बताने के लिए कि उस समय उनकी आयु 23 साल थी? या कि यह भी कि उस वर्ष उन्होंने *आर्यभटीय* की रचना की? *आर्यभटीय* के कुछ टीकाकारों का, और कुछ आधुनिक विद्वानों का भी मत है कि *आर्यभटीय* की रचना का काल भी यही है। परंतु अन्य कई विद्वान इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार, इसका प्रयोजन संभवतः यही स्पष्ट करना रहा है कि कलि 3600 में विषुव-अयन शून्य था, इसलिए आर्यभट द्वारा दी गई ग्रहों के चक्करों की गणनाओं से, ग्रहों की स्थितियां जानने के लिए बीजगणितीय गणनाएं करके जोड़-घटाने की ज़रूरत नहीं है। इन विद्वानों का कहना है कि *आर्यभटीय* एक प्रौढ़ अवस्था वाले आचार्य की रचना प्रतीत होती है।

आर्यभट सुस्पष्ट जानकारी नहीं देते कि वे कहां के निवासी थे, मगर *आर्यभटीय* के द्वितीय भाग गणितपाद के मंगलाचरण में कहते हैं: "ब्रह्मा, पृथ्वी, चंद्रमा, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि तथा नक्षत्रों को नमस्कार करके आर्यभट इस कुसुमपुर में अतिशय पूजित ज्ञान का वर्णन करता है।'

यहां आर्यभट ने नहीं कहा है कि उनका जन्म कुसुमपुर में हुआ है। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि कुसुमपुर में आदृत ज्ञान (गणित-ज्योतिष) का वे वर्णन कर रहे हैं। पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) को पुष्पपुर और कुसुमपुर के नाम से भी जाना जाता था। कई संस्कृत रचनाकारों ने पाटलिपुत्र को

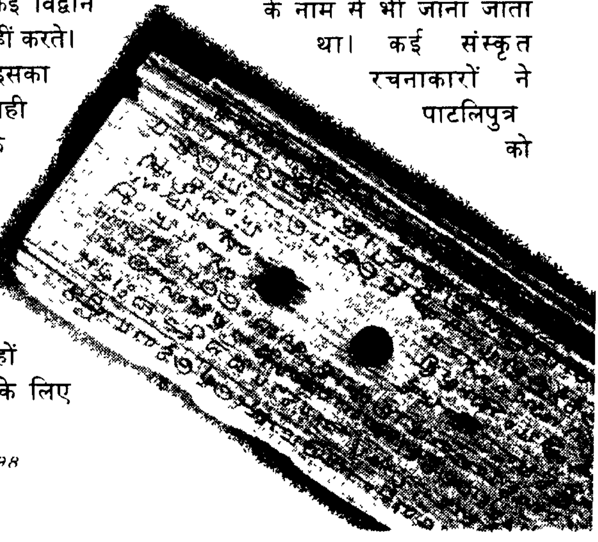

कुसुमपुर कहा है। *आर्यभटीय* के सबसे पुराने भाष्यकार भास्कर-प्रथम (629 ई.) ने भी मगध के पाटलिपुत्र को ही कुसुमपुर माना है। वे यह भी बताते हैं कि कुसुमपुर में स्वायंभुव या ब्रह्मसिद्धांत का विशेष आदर था। *आर्यभटीय* के मंगलाचरणों में और अंतिम श्लोक में स्वयंभू ब्रह्मा को शायद इसीलिए सर्वप्रथम नमस्कार किया गया है।

अतः यह लगभग निर्विवाद तय हो जाता है कि आर्यभट ने कुसुमपुर (पटना) में रहकर अपने ग्रंथ की रचना की थी। मगर उन्होंने यह नहीं कहा कि उनका जन्म भी कुसुमपुर में ही हुआ था। आर्यभट के जन्मस्थान की सूचना अन्य स्रोतों से मिलती है।

अश्मक आर्यभट:

आर्यभटीय के भाष्यकार भास्कर-प्रथम ने आर्यभट को अश्मक, *आर्यभटीय* को आश्मकतंत्र तथा आश्मकीय और आर्यभट के अनुयायियों को आश्मकीयाः कहा है। आर्यभट के टीकाकार नीलकंठ (पंद्रहवीं सदी) ने भी लिखा है कि आर्यभट का जन्म अश्मक जनपद में हुआ था (अश्मकजनपदजात)।

बुद्धकालीन सोलह महाजनपदों में एक जनपद अश्मक (अस्सक) भी था। यह दक्षिण में गोदावरी तट के आसपास था और इसकी राजधानी पतिठ्ठान (महाराष्ट्र के औरंगाबाद के पास प्रतिष्ठान, पैठण) में थी। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में जिस अश्मक प्रदेश का उल्लेख है वह भी महाराष्ट्र में था। *दशकुमारचरित* (दंडी) का अश्मक राज्य विदर्भ के अन्तर्गत था।

ईसा की पांचवीं सदी का अंतिम चरण गुप्त साम्राज्य के अवसान का काल था। मगर दक्षिणापथ के अश्मक प्रदेश पर उस समय वा ां की वत्सगुल्म (आधुनिक वाशीम, विदर्भ) शाखा के राजा हरिषेण का शासन था। गुप्तों और वाकाटकों के संबंध अच्छे थे। अतः वाकाटकों के प्रभावक्षेत्र में पैदा हुए आर्यभट विशिष्ट अध्ययन या अध्यापन के लिए कुसुमपुर

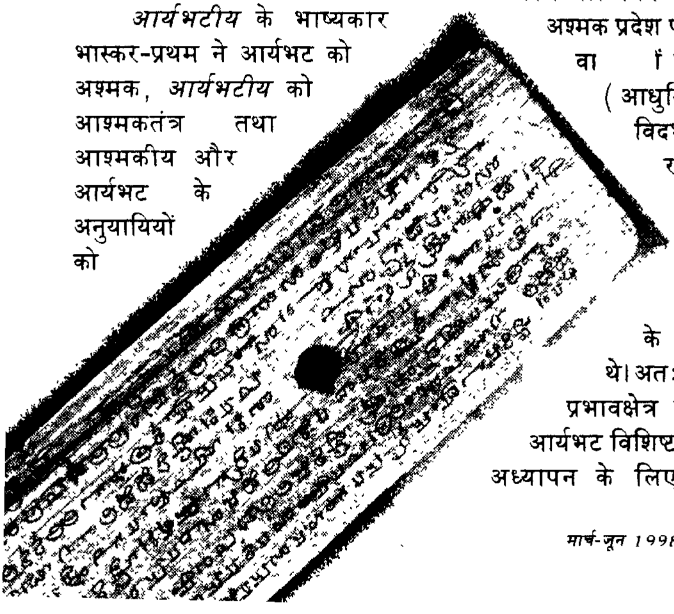

(पाटलिपुत्र) चले आए हों, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। उस समय पाटलिपुत्र ज्योतिष के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। वहां एक वेधशाला भी थी। पटना के एक इलाके को आज भी खगौल (खगोल) के नाम से जाना जाता है, जिससे पता चलता है कि किसी समय वहां एक वेधशाला थी। नालंदा की प्रसिद्ध विद्यापीठ भी बहुत दूर नहीं थी।

भास्कर-प्रथम के ग्रंथों से पता चलता है कि आर्यभट अध्यापक थे, आचार्य थे। भास्कर यह भी सूचना देते हैं कि पांडुरंगस्वामि, लाटदेव और निःशंकु ने आर्यभट के चरणों में बैठकर ज्योतिष विद्या अर्जित की थी। आर्यभट के इन शिष्यों में लाटदेव का भारतीय गणित-ज्योतिष के इतिहास में विशेष स्थान है।

बस, आर्यभट के जीवन के बारे में इतनी ही प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है। हम नहीं जानते कि उनके माता–पिता के नाम क्या थे, गोत्र क्या था, उन्होंने कहां और किससे शिक्षा प्राप्त की, उन्होंने कुल कितने ग्रंथों की रचना की और उनका देहांत किस साल में हुआ।

प्राचीन भारत की बहुत-सी विभूतियों के बारे में अनेक दंतकथाएं प्रसिद्ध हैं। कालिदास और वराहमिहिर के बारे में बहुत-से आख्यान सुनने-पढ़ने को मिलते हैं। परंतु आर्यभट के बारे में कोई आख्यान या दंतकथा प्रसिद्ध नहीं है। एक प्रकार से यह अच्छा ही है। दंतकथाओं से सच्चाई को खोज निकालने में बड़ी कठिनाई होती है। जब देखते हैं कि प्राचीन भारत के अधिकतर महापुरुषों का समय निर्धारित कर पाना भी संभव नहीं है, तो आर्यभट का जन्मवर्ष ठीक-ठीक ज्ञात होना ही एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वस्तुतः सबसे बड़ी उपलब्धि है- *आर्यभटीय* ग्रंथ, जिसका समुचित मूल्यांकन हमारे समय में ही संभव हुआ है।

3

आर्यभटीय

प्राचीन भारत में गणित और ज्योतिष का अध्ययन साथ-साथ होता था, इसलिए प्रायः एक ही पुस्तक में गणित और ज्योतिष की जानकारी प्रस्तुत कर दी जाती थी। *आर्यभटीय* पुस्तक भी ऐसी ही है।

गणित-ज्योतिष के ग्रंथ मुख्यतः तीन प्रकार के थे – सिद्धांत, तंत्र और करण। जिस ग्रंथ में गणना कल्प*

* काल का एक बड़ा विभाग जो एक हजार महायुगों या 4 अरब 32 करोड़ (4,32,00,00,000) वर्ष का कहा गया है।

से आरंभ की जाती थी उसे 'सिद्धांत', जिसमें कलियुग से आरंभ की जाती थी उसे 'तंत्र' और जिसमें वर्तमान काल के किसी निश्चित क्षण से गणना की जाती थी उसे 'करण' कहा जाता है। *आर्यभटीय* में महायुग और कलियुग के दिनों की संख्याएं दी गई हैं, इसलिए यह तंत्र-ग्रंथ है। ब्रह्मगुप्त ने इसे तंत्र मानकर ही अपने सिद्धांत के तंत्र-परीक्षाध्याय में इसकी आलोचना की है। मगर *आर्यभटीय* में कल्पारंभ से भी दिनों की संख्याएं बताई गई हैं, इसलिए इसे सिद्धांत-ग्रंथ भी माना जा सकता है।

स्वयं आर्यभट ने ही पुस्तक को *आर्यभटीय* नाम दिया है। पुस्तक के अंतिम श्लोक में वे बताते हैं: "पहले स्वयंभू ब्रह्मा ने जो ज्ञान कहा था तथा जो सत्य है, उसी ज्ञान को *आर्यभटीय* के नाम से प्रस्तुत किया गया है।"

आर्यभटीय में कुल 121 श्लोक हैं, जिन्हें आज दस पृष्ठों की एक मुद्रित पुस्तिका में बड़े आराम से प्रस्तुत किया जा सकता है। पुस्तक चार पादों (चरणों या भागों) में विभक्त है – गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। गीतिकापाद में कुल 13 श्लोक हैं। इनमें दस श्लोक गीतिका छंद में हैं, इसलिए इस पाद को दशगीतिका-सूत्र भी कहते हैं। इस भाग के प्रथम श्लोक में ब्रह्मा की वंदना है और पुस्तक के आगे के तीन पादों के नाम-निर्देश हैं। फिर, केवल एक ही श्लोक में, आर्यभट अपनी नई अक्षरांक पद्धति के सारे नियम प्रस्तुत कर देते हैं। अंतिम 13 वें श्लोक में दशगीतिका-सूत्र की स्तुति है। शेष दस श्लोकों में आकाशीय पिंडों के चक्कर (भगण), कल्प तथा युग के परिमाण, 24 अर्धज्याओं के मान आदि विषय सूत्र-रूप में हैं।

गणितपाद में गणित के विषय अत्यंत संक्षिप्त रूप में कुल 33 श्लोकों में दिए हैं। इनमें पाई (π) का मान और प्रथम घात के अनिर्णीत समीकरणों (कुट्टक गणित) का विवेचन विशेष महत्व का है।

कालक्रियापाद में 25 श्लोक हैं, जिनमें काल-गणना के बारे में बहुत-सी बातों की जानकारी दी गई है।

चौथे और अंतिम पाद, गोलपाद में 50 श्लोक हैं, जिनमें खगोल के विभिन्न वृत्तों को समझाकर पृथ्वी, चंद्र तथा ग्रहों की गतियों को स्पष्ट किया गया है। ग्रहणों के कारण भी बताए गए हैं। इसी गोलपाद में आर्यभट ने प्रतिपादित किया है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है और तारामंडल स्थिर है।

आर्यभटीय में केवल एक ही देवता ब्रह्मा की वंदना है। हमारे यहां परम्परागत प्राचीन ज्ञान को देवताओं का प्रसाद माना जाता रहा है। जैसे, मान लिया गया कि ब्राह्मी लिपि देवता

ब्रह्मा की देन है। उसी प्रकार, भारत के परम्परागत ज्योतिष-ज्ञान को भी ब्रह्मोक्त मान लिया गया। ब्रह्म या पितामह या स्वायंभुव सिद्धांत सबसे प्राचीन था और कुसुमपुर में इसका विशेष आदर था, इसलिए आर्यभट की इसके प्रति अधिक आसक्ति थी।

वस्तुत: *आर्यभटीय* ब्रह्मपक्ष का ही ग्रंथ है। मगर *आर्यभटीय* में विषय का प्रतिपादन सूत्र-शैली में था, सुस्पष्ट था, इसमें नए विचार थे और इसके स्थिरांक भी बेहतर थे, इसलिए इस ग्रंथ को जल्दी ही ख्याति मिल गई।

उत्तर भारत में भी ईसा की दसवीं सदी तक *आर्यभटीय* का अध्ययन होता रहा। काश्मीरी पंडित भट्टोत्पल (966 ई.) ने अपने टीका-ग्रंथों में *आर्यभटीय* के कई उदाहरण भी दिए हैं। मगर लगभग 1000 ई. से समूंचे उत्तरापथ में *आर्यभटीय* के पठन-पाठन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।

आर्यभटीय पर टीकाएं:

आर्यभटीय ग्रंथ अत्यंत संक्षिप्त है, सूत्र रूप में है, इसलिए टीका के बिना इसे समझ पाना संभव नहीं है। पता चलता है कि सबसे पहले आर्यभट के शिष्य प्रभाकर ने ही इस पर टीका लिखी थी, मगर अब वह उपलब्ध नहीं है। *आर्यभटीय* की सबसे प्राचीन और सबसे उत्तम टीका जो उपलब्ध है वह है भास्कर-प्रथम का *आर्यभटीय-भाष्य*, जो उन्होंने वलभी (सौराष्ट्र, गुजरात) में 629 ई. में लिखा था। भास्कर-प्रथम ने गणित-ज्योतिष पर दो स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे – *महा-भास्करीय* और *लघुभास्करीय*। ये ग्रंथ *आर्यभटीय* में प्रतिपादित विषयों पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। दिलचस्प बात यह है कि *आर्यभटीय* की तरह भास्कर-प्रथम की कृतियां भी उत्तर भारत में लुप्त हो गई थीं। शं. बा. दीक्षित और सुधाकर द्विवेदी को भास्कर-प्रथम की कोई जानकारी नहीं थी। सन् 1930 में डा. विभूतिभूषण दत्त ने केरल के ग्रंथालयों में भास्कर-प्रथम की हस्तलिखित पुस्तकें खोज निकालीं, और उनका विवरण प्रकाशित किया, तभी विद्वज्जगत को प्राचीन भारत के इस गणितज्ञ-ज्योतिषी के बारे में जानकारी मिली।

भास्कर-प्रथम के बाद आर्यभटीय की जो टीकाएं लिखी गईं वे दक्षिण भारत के, प्रमुखत: केरल के पंडितों की हैं। इनमें सूर्यदेव यज्वा (जन्म 1191 ई.) और नीलकंठ सोमयाजी (जन्म 1444 ई.) के आर्यभटीय-भाष्य विशेष महत्व के हैं। आर्यभट की कुछ टीकाएं तेलुगु और मलयालम में भी उपलब्ध हैं।

पता चलता है कि आर्यभट ने कम-से-कम एक और ग्रंथ लिखा था, जिसका नाम *आर्यभट–सिद्धांत* था। *आर्यभट-सिद्धांत* आज उपलब्ध नहीं

है, मगर बाद के कई उल्लेखों से पता चलता है कि उसमें किस तरह की जानकारी रही होगी। जहां *आर्यभटीय* में दिन की गिनती एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक की गई है (औदायिक पद्धति), वहां *आर्यभट-सिद्धांत* में यह एक मध्यरात्रि से दूसरी मध्यरात्रि तक थी (आर्द्धरात्रिक पद्धति)। *आर्यभट-सिद्धांत* के जो 34 श्लोक उपलब्ध हुए हैं उनमें छाया, यष्टि, चक्र, घटिका, शंकु आदि ज्योतिष-यंत्रों यानी खगोल शास्त्र के यंत्रों की जानकारी है।

यहां तक हमने आर्यभट और उनके समय तथा कृतित्व का सामान्य परिचय प्राप्त किया। अगली बार हम उनके एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ *आर्यभटीय* के उन विषयों की चर्चा करेंगे जिनका भारतीय गणित-ज्योतिष के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व है।

गुणाकर मुळे: प्रसिद्ध विज्ञान लेखक। हिंदी में विज्ञान और विज्ञान के इतिहास पर शायद एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने चार दशकों तक लगातार और गंभीर लेखन किया है। उनका मूल विषय गणित रहा है। पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

कब खत्म हो रही है आपकी सदस्यता।

संदर्भ के लिफाफे पर लगी पते की स्लिप पर गौर करें। इसमें पते के अलावा एक और जानकारी होती है। जो इस तरह लिखी होती है -

23rd Issue (last Issue)

इसका मतलब है कि आपकी सदस्यता 23 वें अंक में समाप्त होने वाली है। इसलिए 22वां अंक पाते ही आप नया सदस्यता शुल्क भेज दें। ताकि आगे के अंक आपको लगातार मिलते रहें।